सत्यांद्ग

संपादकीय

अर्थ के साथ और अर्थ के बाद

अमेरिका-ब्रिटेन आदि देद्गों की तरह भारतवर्द्द में अदालती निर्णयों, दिद्गानिर्देद्गों के विद्गलेद्गण व मूल्यांकन के साथ समुचित समीक्षा की व्यवस्था नहीं है; इसके लिए स्वतंत्र, स्वायश, निद्गपक्ष एजेंसी की बात अभी दूर की कौड़ी ही लगती है। लेकिन ऐसी व्यवस्थित प्रक्रिया की उपादेयता से ज्यादा दिन तक मुंह मोड़ना उचित नहीं होगा, खासकर तब, जब अदालतों खासकर निचली अदालतों में व्याप्त भ्रद्गटाचार दिनोंदिन बढ़ती जा रहा है, निचले से ी परी न्यायालयों तक के फैसले अनेक बार 'अन्यायिक' लगते हैं। इन पर सतही नुक्ताचीनी करने की बजाय संतुलित ढंग से इन्हें मूल्यांकित किया जाए, तो अदालतें अपने फैसलों के प्रति जिम्मेदार होंगी और न्यायिक-निद्गपक्ष निर्णयों की संभावना बढ़ेगी। अस्तु, किसी के लिए भी जेल जाना एक बड़ी घटना है, जेल जाने वालों के लिए भी और उसे जानने वालों के लिए भी; हालांकि पेद्गोवर अपराधी किस्म के कुछ लोग ऐसे भी हैं, जिनके लिए जेल जाना-आना बिलकुल सामान्य दिनचर्या की बात है। जेल जाने की खबर के साथ ही जेल जाने के कारणों की तह तक पहुंचने की जिज्ञासा उत्पन्न होती है। जेल कोई स्वेच्छा से नहीं जाता, किंतु यदि उससे जाने से बचने के लिए जो वैकल्पिक रास्ता मौजूद हो, उसे अपनी इच्छा-रुचि से न अपनाए, तो उसे स्वेच्छा से ही जाना कहेंगे। इस प्रकार जेल जाना बाध्यकारी भी कहा जा सकता है और स्वैच्छिक भी। स्वैच्छिक इस अर्थ में कि जमानत के लिए कानूनी प्रक्रिया को अपनाकर जितना किया जा सकता था, उसे भरसक करने का प्रयास किया, लेकिन जेल से बचने के लिए संबंधित पक्षों से समझौता करना उचित नहीं समझा, क्योंकि ऐसा समझौता अपने उसूलों से समझौता करना होता। यह सोचना बिलकुल मुनासिब है कि हमारा जेल जाना पैसे के लिए हुआ, बेद्गाक केस पैसे का नहीं था। वह दहेज उत्पीड़न और घरेलू हिंसा को लेकर 498ए का केस था, अर्थात् दहेज मांगने और उसके लिए हिंसा करने का आरोप था।

सन् 2013 के मई महीने में हाजीपुर कोर्ट में यथालिखित 498ए का मुकदमा दायर किया गया था। 2014 में अनौपचारिक रूप में पता चलने पर तुरंत कोर्ट में जमानत अर्जी दी गई, जिसे जिला न्यायालय ने तीन तिथियों पर हमारी उपस्थिति के साथ सुनवाई के उपरांत खारिज कर दी, पर हिरासत में नहीं लिया। फरवरी, 2015 ई. में याचिका खारिज होने के बाद पटना उच्च न्यायालय में अर्जी दाखिल की गई, कोर्ट ने गिरफ्तारी पर तत्काल रोक लगाई, छह महीने की सुनवाई के उपरांत अगस्त में आरोपी को 'Man of a letters' कहते हुए जमानत तो दी, पर साथ ही 7000 रुपए प्रति माह देने की द्गार्त लगा दी। तुरंत अदालत का ध्यान 'Mention' द्वारा आद्गद्गट कराकर परिवादिनी को बिहार सरकार की द्गिक्षिका के तौर पर नौकरी करते हुए बताया गया; फिर अपने नौकरी न करने, दिल्ली से उस युगसेतु पत्रिका निकालने की ओर ध्यान आद्गद्गट कराया गया, जो आर्थिक तंगी के कारण बंद होने की स्थिति में थी। फिर भी कोर्ट ने प्राइवेट नौकरी करने या पत्रिका निकालने में उलझने की बजाय सात हजार प्रति मास रुपए देने का आदेद्गा दिया। यह द्गार्त न्यायालयी प्रक्रिया की सामान्य-सी बात थी, पर हमारे लिए बड़ी सजा थी, बहुत भयावह और अनैतिक बात लगी। इसलिए किसी तरह पैसे जमा कराकर जमानत लेने की बजाय पुनः पटना उच्च न्यायालय में उक्त द्गार्त के खिलाफ चुनौती याचिका दायर की गई। यह अलग बात है कि वकील की कारगुजारी के कारण वह याचिका अंततः कोर्ट में हाजिर होने के लिए समय लेने तक आकर सिमट गई। कोर्ट का आदेद्गा कितना उचित था, कितना अनुचित, यह प्रद्गन अप्रासंगिक था, पर आर्थिक संसाधनों के तात्कालिक अभाव को देखते हुए देर-सबेर जेल जाने का प्राक्कथन भी उसी दिन लिख दिया, नाक सीधे न छूकर घुमाकर छूने की प्रक्रिया अपनाई गई। इसका एहसास तभी हो गया था, इसलिए पैसे की तंगी के बावजूद यथासंभव कानूनी लड़ाई लड़ते रहने का निद्गचय किया। यह अलग बात है कि अदालती पेंचीदगी के कारण यह लड़ाई कभी परवान नहीं चढ़ पाई। न तो उच्च न्यायालय और न ही उच्चतम न्यायालय

ने राहत दी, उच्चतम न्यायालय में दो-तीन बार पत्र लिखकर ध्यान आइृष्ट कराया, तो वहाृ से जवाब में अदालती प्रक्रिया के माध्यम से आने को कहा गया और जब काफी तैयारी के साथ क्तोफ्के खिलाफ याचिका दाखिल की गई, तो वह एडमिट होने के समय ही अस्वीइृत हो गई। फिर पुनर्विचार याचिका दाखिल की गई। वह भी अस्वीइृत तो हुई, पर लगभग पाृच महीने बाद तब, जब बीच में अस्सी दिनों तक जेल में रहकर जमानत कराकर बाहर आ गया। पर सवाल यह है कि जब मामला सुप्रीम कोर्ट में विचाराधीन था, तो इतनी जल्दीबाजी करके जमानत कराने की जरूरत क्या थी? क्या इसे किसी तरह टाला नहीं जा सकता था?

22 मार्च, 2018 को घर से फोन आया कि भेल्दी थाना के दारोगा वही 498ए वाले केस के सिलसिले में दल-बल के साथ कुर्की जब्ती करने आए हैं, फिर हमारी भी उनसे थोड़ी बातचीत हुई, जिसमें उन्होंने कहा कि 498ए के पुराने केस में हमारे ीं पर ीं पर से दबाव' है, इसलिए दो-तीन दिनों में कोर्ट में हाजिर हो जाइए। हमने कहा कि हम तो तीन-चार बार हाजिर हो चुके हैं, हाई कोर्ट ने जमानत देने के साथ जो क्र्त लगाई है, उसको चुनौती देते हुए सुप्रीम कोर्ट में याचिका दायर की गई है। यह सही है कि मूल याचिका सर्वोच्च न्यायालय द्वारा एडमिट होने के समय ही अस्वीकार कर दी गई, लेकिन पुनः पुनर्विचार याचिका दायर की गई है, जो नंबरिंग पर है और एक सप्ताह के अंदर ही उस पर निर्णय होना बताया गया है। बाद में जिला न्यायालय और थाना प्रभारी दोनों को सर्वोच्च न्यायालय की याचिका-संख्या सहित सभी आवइयक विवरण अपने मोबाइल नंबर से प्रेवृित कर दिया। इधर 24 अप्रैल को पटना राजधानी एक्सप्रेस से चलकर 25 को हाजीपुर कोर्ट में जाकर उपस्थित हो गया, कोर्ट ने हमें हिरासत में भेज दिया। जेल जाने का यही तात्कालिक कारण था। केवल पैसे की कमी की वजह से जेल जाने की बात गले उतरने वाली नहीं है, क्योंकि बहुत पैसे वाले लोग भी जेल जाते ही हैं, यह अलग बात है कि उनके जेल जाने का कारण बड़ा होता है। गरीब लोग बहुत सारे ऐसे केस में जेल जाते हैं, जिनमें प्रत्यक्षतः-परोक्षतः पैसे खर्च करने पर जेल जाने की नौबत न आए।

बहरहाल, सवाल यह भी है कि सात हजार का बैरियर क्यों नहीं हट पाया या फिर उसे देने की व्यवस्था क्यों नहीं हुई। ये दोनों काम बहुत बड़े नहीं हैं, इनकी व्यवस्था करना भी नामुमकिन नहीं, तो फिर इतनी छोटी बात के लिए जेल जाने की नौबत क्यों आई? वह भी दो-चार के लिए दिन नहीं, बल्कि पूरे अस्सी दिन के लिए। इस दौरान बिहार लोक सेवा आयोग द्वारा सहायक प्राचार्य का साक्षात्कार किया गया, पता नहीं क्यों योग्य उम्मीदवारों की सूची में नाम होने और साक्षात्कार हेतु निर्धारित अंकों से अधिक होने के बावजूद साक्षात्कार में बुलाए जाने वालों की सूची में मेरा नाम नदारद था। जाता कि नहीं, जाना संभव होता कि नहीं, यह तो बाद की बात थी। जेल के अंदर से ही यथासंभव कुछ जगह जैसे 'टैगोर नेइनल फेलाइिप' आदि के लिए आवेदन भी किया। लेकिन तमाम प्रयासों के बावजूद पिछले कई सालों से अपना सुदृढ़ आर्थिक आधार खड़ा करने में विफल रहा। अस्तु, जमानत पर छूटने के बाद एक सप्ताह के भीतर कोर्ट में तारीख पर हाजिर हुआ, तो जज महोदय ने उपस्थित परिवादिनी से कहा कि यह मुकादमा चार-पाृच साल तक चल सकता है, अंत में यह खारिज भी हो सकता है और आरोपी को सजा भी हो सकती है। इसलिए कुछ पैसे दिलवा देता हूृ। परिवादी कुछ कहती, इससे पहले तत्काल हमने कहा कि मैं एक पैसा नहीं दूृगा, आप मेरी ओर से इनको पैसा मत दिलवाइए, आखिर पैसे कोई और तो देगा नहीं, मुझे ही देने पड़ेंगे। जब महीने-महीने सात हजार नहीं दे पाया और इसके लिए जेल होकर आ गया, तो फिर एकमुइत लाखों रुपए कहाृ से और कैसे दिए जाएृगे। चूृकि दे नहीं सकता, अतः इसी पर सजा मुकर्रर कर दीजिए। पैसे देकर जमानत लेना और समझौता करना तनिक भी उचित नहीं मानता। उन्होंने कहा कि आपके अच्छे बात-व्यवहार के कारण ही जमानत दी गई है, अब अगर ऐसा व्यवहार रहा तो आगे मुइिकलें आएृंगी। मैंने कहा कि अच्छे व्यवहार पर भी आपने तो जमानत दी नहीं, अस्सी दिनों के बाद उच्च न्यायालय ने दी है। खैर, इसके बाद उन लोगों की गवाही हुई और पेइी से छूट लेकर हम अपने लेखन-कार्य में संलग्न हो गए हैं।